दिल्ली उच्च न्यायालय : नई दिल्ली

सुरक्षित तिथि: 21.02.2024
उद्घोषित: 06.03.2024

जमानत आवेदन सं. 3414/2022 और आप.वि.आ. 23677/2022
जमानत आवेदन सं. 3739/2022 और आप.वि.आ. 26317/2022, आप.वि.आ. 26318/2022
जमानत आवेदन सं. 3741/2022 और आप.वि.(जमानत) 1521/2022, आप.वि.आ. 26323/2022

अब्राहम जॉर्ज ..... आवेदक
योगेश सुधांशु कुमार ..... आवेदक
महेंद्र गंभीर ..... आवेदक

द्वारा: श्री सिद्धार्थ अग्रवाल, वरिष्ठ अधिवक्ता सह श्री अरुन श्री कुमार, श्री हर्श यादव, श्री अभ्युदय शिशोदिया और श्री विश्वजीत सिंह भाटी जमानत आवेदन 3414/2022 में अधिवक्तागण
श्री शिव चोपड़ा, सुश्री आध्या खन्ना और श्री सिद्धार्थ अरोड़ा जमानत आवेदन 3739/2022 में अधिवक्तागण
श्री अदित्या वाधवा, श्री आयुश श्रीवास्तव और श्री सिद्धार्थ सुनील जमानत आवेदन 3741/2022 में अधिवक्तागण

बनाम

गंभीर कपट अन्वेषण कार्यालय ..... प्रत्यर्थी

द्वारा: श्री अमित तिवारी, वरि.पै.अधि. सह श्री पंकज मोहन, वरिष्ठ अभियोजक और सुश्री चेतान्य पुरी, सुश्री पारुल चुटानी, श्री कर्तिकेय यादव और श्री लक्ष्य सिंह जमानत आवेदन 3414/2022 एवं जमानत आवेदन 3739/2022 में अधिवक्तागण
श्री राजेश गोगना, कें.स.स्था.अधि. सह श्री पंकज मोहन, वरिष्ठ अभियोजक और सुश्री प्रिया सिंह, सुश्री पारुल चुटानी, श्री कार्तिकेय यादव और श्री लक्ष्य सिंह, जमानत आवेदन 3741/2022 में अधिवक्तागण, श्री अक्षय कुमार सिंह, अधिवक्ता (वीडियो कॉल के माध्यम से)

कोरम:
माननीय न्यायमूर्ति श्री नवीन चावला

<u>निर्णय</u>

1. ये आवेदन दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 438 (संक्षेप में, 'दं.प्र.सं.') के अंतर्गत दायर किए गए हैं, जिसमें ***गंभीर कपट अन्वेषण कार्यालय बनाम ड्यूरा लाइन इंडिया प्राइवेट लिमिटेड (डी.आई.पी.एल.) और अन्य*** शीर्षक वाले

सीसी सं. 272/2022 में अग्रिम जमानत देने की माँग की गई है जो कि विद्वत अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश-03, विशेष न्यायालय (कंपनी अधिनियम), दक्षिण-पश्चिम जिला, द्वारका न्यायालय, नई दिल्ली (इसके पश्चात् 'विचारण न्यायालय' के रूप में संदर्भित) के न्यायालय के समक्ष लंबित है। चूँकि आवेदकों के लिए विद्वान अधिवक्तागण द्वारा लगभग इसी तरह की प्रस्तुतियाँ की गई हैं, इसलिए इन आवेदनों का निपटान इस सामान्य निर्णय द्वारा किया जा रहा है।

2. उपरोक्त शिकायत इस मामले में प्रत्यर्थी द्वारा दं.प्र.सं. की धारा 193 के साथ पठित कंपनी अधिनियम, 2013 (इसके पश्चात् 'अधिनियम' के रूप में संदर्भित) की धारा 436 (1)(क), (घ) के साथ पठित धारा 439 (2), और धारा 212 (6) के साथ पठित धारा 436 (2) और धारा 212 (15) के अधीन दायर की गई है जिसके द्वारा विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा दिनांक 16.07.2022 को पारित आदेश के द्वारा इस मामले के आवेदक(कों) को धारा 99 के साथ पठित धारा 447, 449, 96 के साथ पठित धारा 447 और 448 के अधीन अपराध में अभियुक्त के तौर पर समन किया गया था; और जहाँ तक आवेदक अब्राहम जॉर्ज और महेंद्र गंभीर का संबंध है, उन्हें अधिनियम की धारा 450 के साथ पठित धारा 135 के अधीन और आवेदक योगेश सुधांशु को अधिनियम की धारा 447 के साथ पठित धारा 447 और 448 के अधीन समन किया गया था।

<u>प्रत्यर्थी के लिए विद्वान अधिवक्ता की प्रस्तुतियाँ:</u>

3. प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने वर्तमान आवेदनों की संधार्यता पर प्रारंभिक आपत्ति जताई। वह प्रस्तुत करते हैं कि चूँकि आवेदक(कों) को प्रत्यर्थी द्वारा विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष दायर शिकायत पर समन किया गया है, इसलिए आवेदक(कों) द्वारा दं.प्र.सं. की धारा 438 के अंतर्गत दायर आवेदन अब संधार्य नहीं होगा; आवेदक(कों) के लिए उपलब्ध एकमात्र उपाय दं.प्र.सं. की धारा 439 के अंतर्गत जमानत के लिए आवेदन करना है।

4. प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि दं.प्र.सं. की धारा 438 के अंतर्गत एक आवेदन केवल तभी संधार्य हो सकता है जब व्यक्ति के पास यह विश्वास करने का कारण हो या आशंका हो कि वह एक गैर-जमानती अपराध करने के आरोप में गिरफ्तार हो सकता है। वह प्रस्तुत करते हैं कि, निस्संदेह, शिकायत दर्ज करने से पहले आवेदक(कों) को गिरफ्तार नहीं किया गया था। एक बार शिकायत दर्ज होने के बाद, विद्वान विचारण न्यायालय शिकायत में लगाए गए आरोपों की प्रकृति को देखने के बाद और आवेदक(कों) को सुनने के बाद, आवेदक को *'अभिरक्षा'* में ले सकता है। वह प्रस्तुत करते हैं कि *'गिरफ्तारी'* और *'अभिरक्षा'* शब्दों के विधिक अर्थ और निहितार्थ में अंतर है, जैसा कि उच्चतम न्यायालय द्वारा ***प्रवर्तन निदेशालय बनाम दीपक महाजन,*** (1994) 3 एससीसी 440 और ***संदीप कुमार बाफना बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य,*** (2014) 16 एससीसी 623 के अपने निर्णयों में समझाया गया है।

5. ***सतेंद्र कुमार अंतिल बनाम केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो एवं अन्य*** (2022) 10 एससीसी 51 में उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करते हुए, वह प्रस्तुत करते हैं कि अधिनियम की धारा 212 (6) के अंतर्गत शिकायत के मामले में जमानत देना उसमें निर्धारित विशेष शर्तों द्वारा सीमित है और जमानत के लिए आवेदन पर विचार करने के लिए सामान्य नियम लागू नहीं किए जा सकते हैं।

6. ***गुरबख्श सिंह सिब्बिया बनाम पंजाब राज्य*** (1980) 2 एससीसी 565 में उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करते हुए, वह प्रस्तुत करते हैं कि किसी भी व्यक्ति को अग्रिम जमानत देने हेतु, उसके लिए यह दिखाना आवश्यक है कि उसके पास यह विश्वास करने के कारण हैं कि उसे गिरफ्तार किया जा सकता है। वह प्रस्तुत करते हैं कि, वर्तमान मामले में, चूँकि आवेदक को प्रत्यर्थी द्वारा जाँच के दौरान गिरफ्तार नहीं किया गया था, इसलिए उसके पास यह मानने का कोई कारण नहीं है कि उसे जारी किए गए समन के उत्तर में विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने के बाद उसे गिरफ्तार किया जा सकता है।

7. वह प्रस्तुत करते हैं कि केवल इसलिए कि विद्वान विचारण न्यायालय ने कुछ मामलों में अभियुक्तों द्वारा जमानत पर रिहा किए जाने के लिए दायर आवेदन को खारिज कर दिया है, यह आवेदक(कों) में इस तरह के विश्वास को उत्पन्न नहीं कर सकता है कि यदि वे विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष

जमानत के लिए आवेदन करते हैं, तो उसे भी खारिज कर दिया जाएगा और उन्हें अभिरक्षा में ले लिया जाएगा।

8. वह आगे प्रस्तुत करते हैं कि आवेदक(कों) को अग्रिम जमानत देना, वास्तव में, अधिनियम की धारा 212 (6) के अंतर्गत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने से विद्वान विचारण न्यायालय के विरुद्ध व्यादेश के समान होगा और इसलिए, वर्तमान आवेदन खारिज किए जाने योग्य हैं।

<u>आवेदक(कों) के लिए विद्वान अधिवक्तागण की प्रस्तुतियाँ:</u>

9. दूसरी ओर, आवेदक(कों) के लिए विद्वान अधिवक्ता(गण), ***भारत चौधरी एवं अन्य बनाम बिहार राज्य एवं अन्य*** (2003) 8 एससीसी 77; ***रवींद्र सक्सेना बनाम राजस्थान राज्य,*** (2010) 1 एससीसी 684 में उच्चतम न्यायालय; और ***पी.वी. नरसिम्हा राव बनाम राज्य (सीबीआई),*** आईएलआर (1997) आई दिल्ली 507 में इस न्यायालय की खंड पीठ; और ***पी.वी. नरसिम्हा राव बनाम राज्य (सीबीआई),*** 1997 एससीसी ऑनलाइन दिल्ली 19, और ***दीपक आनंद बनाम राज्य एवं अन्य*** 2018 एससीसी ऑनलाइन दिल्ली 11875 में इस न्यायालय की समन्वय पीठों; और ***सौभाग्य भगत बनाम उत्तराखंड राज्य एवं अन्य*** में उत्तराखंड उच्च न्यायालय (अग्रिम जमानत आवेदन सं. 76/2021 में पारित निर्णय दिनांक 24.08.2023) के निर्णयों पर भरोसा करते हुए यह प्रस्तुत करते हैं कि केवल इसलिए कि शिकायत/आरोप-पत्र दायर किया गया है, यह नहीं कहा जा सकता है कि दं.प्र.सं. की धारा 438 के अंतर्गत आवेदन अब संधार्य नहीं

होगा या अभियुक्त के पास यह आशंका करने का कोई उचित आधार नहीं होगा कि जब वह उसे जारी किए गए समन के अनुपालन में विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित होगा तो उसे गिरफ्तार कर लिया जाएगा या अभिरक्षा में ले लिया जाएगा।

10. वे आगे प्रस्तुत करते हैं कि प्रत्यर्थी के लिए विद्वान अधिवक्ता की यह प्रस्तुति कि आवेदकों को, समन के उत्तर में विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने पर, *'अभिरक्षा'* में ले लिया जाएगा, न कि *'गिरफ्तार किया जाएगा'*, भ्रामक है, क्योंकि *'अभिरक्षा' 'गिरफ्तारी'* के बाद होती है, जैसा कि ***दीपक महाजन*** (पूर्वोक्त) में उच्चतम न्यायालय के निर्णय में भी समझाया गया है, जिस पर प्रत्यर्थी के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा भरोसा किया गया।

11. अधिनियम की धारा 212(6) के अंतर्गत जमानत पर रिहा होने के लिए पूरी की जाने वाली विशेष शर्तों पर, आवेदक(कों) के विद्वान अधिवक्ता(गण) प्रस्तुत करते हैं कि, वर्तमान मामले में, आवेदकों को प्रत्यर्थी द्वारा जाँच के दौरान, 21.03.2023 के आदेश के साथ पठित ***सतेंद्र कुमार अंतिल*** (पूर्वोक्त) में उच्चतम न्यायालय के निर्णय, 2023 एसएससी ऑनलाइन एससी 452 के रूप में प्रकाशित किए गए के संदर्भ में गिरफ्तार नहीं किया गया था, जमानत को नियंत्रित करने वाले सामान्य सिद्धांतों को अग्रिम जमानत देने के लिए भी समान रूप से लागू किया जाना चाहिए और तथापि, चूँकि आवेदक(कों) को जाँच

की अवधि के दौरान गिरफ्तार नहीं किया गया था, इसलिए वे इस न्यायालय से अग्रिम जमानत लेने के हकदार हैं।

12. आवेदक(कों) की आशंका के कारण पर कि यदि वे विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित होते हैं तो उन्हें अभिरक्षा में ले लिया जाएगा, आवेदक(कों) के विद्वान अधिवक्ता(गण) ने ***सुमन चड्ढा बनाम गंभीर कपट अन्वेषण कार्यालय***, 2023 एससीसी ऑनलाइन दिल्ली 4174; ***डॉ बिंदु राणा बनाम गंभीर कपट अन्वेषण कार्यालय***, 2023 एससीसी ऑनलाइन दिल्ली 276; और ***तरनजीत सिंह बग्गा बनाम गंभीर कपट अन्वेषण कार्यालय,*** 2023 एससीसी ऑनलाइन दिल्ली 893, में इस न्यायालय के निर्णयों पर यह प्रस्तुत करने के लिए भरोसा किया कि जिन व्यक्तियों के विरुद्ध प्रत्यर्थी द्वारा इसी विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष इसी तरह की शिकायतें दायर की गई थीं, उन्हें प्रत्यर्थी द्वारा जाँच के दौरान गिरफ्तार नहीं किए जाने के बावजूद अभिरक्षा में ले लिया गया था, और वे लंबे समय तक जेल में बंद रहने के बाद ही इस न्यायालय से जमानत प्राप्त कर सकते थे।

13. वे प्रस्तुत करते हैं कि, इसलिए, आवेदकों की आशंका, कि समन के उत्तर में विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने के बाद उन्हें गिरफ्तार किया जा सकता है, को काल्पनिक या निराधार नहीं कहा जा सकता है।

14. वे आगे प्रस्तुत करते हैं कि आवेदक(कों) पर भागने का जोखिम होने या साक्ष्यों के साथ छेड़छाड़ करने या साक्षियों को प्रभावित करने का कोई आरोप नहीं है।

15. जमानत आवेदन 3739/2022- में श्री योगेश सुधांशु कुमार आवेदक के विद्वान अधिवक्ता आगे प्रस्तुत करते हैं कि आवेदक जाँच का हिस्सा बना है, यद्यपि विचारण में लंबा समय लगने की संभावना है, आवेदक की पृष्ठभूमि साफ है, वह एक वरिष्ठ नागरिक है और पुणे, महाराष्ट्र का निवासी है, उसे कई बीमारियाँ हैं। वह प्रस्तुत करते हैं कि आवेदक को दिनांक 15.12.2022 के आदेश के माध्यम से अंतरिम सुरक्षा प्रदान की गई थी। उस पर इस न्यायालय द्वारा दी गई राहत का दुरुपयोग करने का कोई आरोप नहीं है। वह प्रस्तुत करते हैं कि शिकायत में लगाए गए महत्वपूर्ण आरोप आवेदक के त्यागपत्र देने के बाद की अवधि से संबंधित हैं।

<u>विश्लेषण और निष्कर्ष:</u>

16. मैंने पक्षकारगण के विद्वान अधिवक्तागण द्वारा की गई प्रस्तुतियों पर विचार किया है।

17. गैर-जमानती अपराधों के मामलों में जमानत देने का उपबंध दं.प्र.सं की धारा 437, 438 और 439 में निहित है।

उक्त उपबंध यहाँ नीचे दिए गए हैं:

> ***437. गैर-जमानती अपराध की दशा में कब जमानत ली जा सकेगी।***–*(1) जब कोई व्यक्ति, जिस पर गैर-जमानती अपराध का अभियोग है या जिस*

पर यह संदेह है कि उसने गैर-जमानती अपराध किया है, पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी द्वारा वारंट के बिना गिरफ्तार या निरुद्ध किया जाता है या उच्च न्यायालय अथवा सत्र न्यायालय से भिन्न न्यायालय के समक्ष उपस्थित होता है या लाया जाता है तब वह जमानत पर छोड़ा जा सकता है, किंतु–

(i) यदि यह विश्वास करने के लिए उचित आधार प्रतीत होते हैं कि ऐसा व्यक्ति मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय अपराध का दोषी है तो वह इस प्रकार नहीं छोड़ा जाएगा;

(ii) यदि ऐसा अपराध कोई संज्ञेय अपराध है और ऐसा व्यक्ति मृत्यु, आजीवन कारावास या सात वर्ष या उससे अधिक के कारावास से दंडनीय किसी अपराध के लिए पहले दोषसिद्ध किया गया है, या वह तीन वर्ष या उससे अधिक के, किंतु सात वर्ष से अनधिक की अवधि के कारावास से दंडनीय किसी संज्ञेय अपराध के लिए दो या अधिक अवसरों पर पहले दोषसिद्ध किया गया है तो वह इस प्रकार नहीं छोड़ा जाएगा:

परन्तु न्यायालय यह निदेश दे सकेगा कि खंड (i) या खंड (11) में निर्दिष्ट व्यक्ति जमानत पर छोड़ दिया जाए यदि वह सोलह वर्ष से कम आयु का है या कोई स्त्री या कोई रोगी या शिथिलांग व्यक्ति है:

परन्तु यह और कि न्यायालय यह भी निदेश दे सकेगा कि खंड (1) में निर्दिष्ट व्यक्ति जमानत पर छोड़ दिया जाए, यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि किसी अन्य विशेष कारण से ऐसा करना न्यायोचित तथा ठीक है:

परन्तु यह और भी कि केवल यह बात कि अभियुक्त की आवश्यकता, अन्वेषण में साक्षियों द्वारा पहचाने जाने के लिए हो सकती है, जमानत मंजूर करने से इंकार करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं होगी, यदि वह अन्यथा जमानत पर छोड़ दिए जाने के लिए हकदार है और यह वचन देता है कि वह ऐसे निदेशों का, जो न्यायालय द्वारा दिए जाएँ, अनुपालन करेगा:

परन्तु यह भी कि किसी भी व्यक्ति को, यदि उस द्वारा किया गया अभिकथित अपराध मृत्यु, आजीवन कारावास या सात वर्ष अथवा उससे अधिक के कारावास से दंडनीय है तो लोक अभियोजक को सुनवाई का कोई अवसर दिए बिना इस उपधारा के अधीन न्यायालय द्वारा जमानत पर नहीं छोड़ा जाएगा।

(2) यदि ऐसे अधिकारी या न्यायालय को, यथास्थिति, अन्वेषण, जाँच या विचारण के किसी प्रक्रम में यह प्रतीत होता है कि यह विश्वास करने के लिए उचित आधार नहीं हैं कि अभियुक्त ने गैर-जमानती अपराध किया है किंतु उसके दोषी होने के बारे में और जाँच करने के लिए पर्याप्त आधार हैं तो अभियुक्त धारा 446क के उपबंधों के अधीन रहते हुए और ऐसी जाँच लंबित रहने तक जमानत पर, या ऐसे अधिकारी या न्यायालय के स्वविवेकानुसार, इसमें इसके पश्चात् उपबंधित प्रकार से अपने उपस्थित होने के लिए प्रतिभुओं रहित बंधपत्र निष्पादित करने पर, छोड़ दिया जाएगा।

(3) जब कोई व्यक्ति, जिस पर ऐसे कारावास से जिसकी अवधि सात वर्ष तक की या उससे अधिक की है, दंडनीय कोई अपराध या भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) के अध्याय 6, अध्याय 16 या अध्याय 17 के अधीन कोई अपराध करने या ऐसे किसी अपराध का दुष्प्रेरण या षड्यंत्र या प्रयत्न करने का अभियोग या संदेह है, उपधारा (1) के अधीन जमानत पर छोड़ा जाता है तो न्यायालय यह शर्त अधिरोपित करेगा,–

(क) कि ऐसा व्यक्ति इस अध्याय के अधीन निष्पादित बंधपत्र की शर्तों के अनुसार उपस्थित होगा,

(ख) कि ऐसा व्यक्ति उस अपराध जैसा, जिसको करने का उस पर अभियोग या संदेह है, कोई अपराध नहीं करेगा, और

(ग) कि ऐसा व्यक्ति उस मामले के तथ्यों से अवगत किसी व्यक्ति को न्यायालय या किसी पुलिस अधिकारी के समक्ष ऐसे तथ्यों को प्रकट न करने के लिए मनाने के वास्ते प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः उसे कोई उत्प्रेरणा, धमकी या वचन नहीं देगा या साध्य को नहीं बिगाड़ेगा, और न्याय के हित में ऐसी अन्य शर्तें, जिसे वह ठीक समझे, भी अधिरोपित कर सकेगा।

(4) उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन जमानत पर किसी व्यक्ति को छोड़ने वाला अधिकारी या न्यायालय ऐसा करने के अपने कारणों या विशेष कारणों को लेखबद्ध करेगा।

(5) यदि कोई न्यायालय, जिसने किसी व्यक्ति को उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन जमानत पर छोड़ा है, ऐसा करना आवश्यक समझता है तो, ऐसे व्यक्ति को गिरफ्तार करने का निदेश दे सकता है और उसे अभिरक्षा के लिए सुपुर्द कर सकता है।

(6) यदि दंडाधिकारी द्वारा विचारणीय किसी मामले में ऐसे व्यक्ति का विचारण, जो किसी गैर-जमानती अपराध का अभियुक्त है, उस मामले में साध्य देने के लिए नियत प्रथम तिथि के साठ दिन की अवधि के अंदर

पूरा नहीं हो जाता है तो, यदि ऐसा व्यक्ति उक्त सम्पूर्ण अवधि के दौरान अभिरक्षा में रहा है तो, जब तक ऐसे कारणों से जो लेखबद्ध किए जाएँगे दंडाधिकारी अन्यथा निदेश न दे वह दंडाधिकारी की समाधानप्रद जमानत पर छोड़ दिया जाएगा।

(7) यदि गैर-जमानती अपराध के अभियुक्त व्यक्ति के विचारण के समाप्त हो जाने के पश्चात और निर्णय दिए जाने के पूर्व किसी समय न्यायालय की यह राय है कि यह विश्वास करने के उचित आधार हैं कि अभियुक्त किसी ऐसे अपराध का दोषी नहीं है और अभियुक्त अभिरक्षा में है तो वह अभियुक्त को, निर्णय सुनने के लिए अपने हाजिर होने के लिए प्रतिभुओं रहित बंधपत्र उसके द्वारा निष्पादित किए जाने पर छोड़ देगा।

***438. गिरफ्तारी की आशंका करने वाले व्यक्ति को जमानत देने का निदेश।**–(1) जहाँ किसी व्यक्ति को यह विश्वास करने का कारण है कि उसे गैर-जमानती अपराध करने के आरोप में गिरफ्तार किया जा सकता है, वहाँ वह उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय को इस धारा के अधीन निदेश के लिए आवेदन कर सकता है कि ऐसी गिरफ्तारी की दशा में उसे जमानत पर रिहा कर दिया जाए; और वह न्यायालय, अन्य बातों के साथ-साथ, निम्नलिखित बातों पर विचार करने के पश्चात्, ऐसा कर सकता है, अर्थात-*

(i) आरोप की प्रकृति और गंभीरता;

(ii) आवेदक का पूर्ववृत्त, जिसमें यह तथ्य भी शामिल है कि क्या उसने पहले किसी संज्ञेय अपराध के संबंध में न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि पर कारावास भोगा है;

(iii) आवेदक के न्याय से भागने की संभावना; और

(iv) जहाँ आरोप आवेदक को इस प्रकार गिरफ्तार करके उसे चोट पहुँचाने या अपमानित करने के उद्देश्य से लगाया गया है, वहाँ या तो आवेदन को तुरंत खारिज कर दिया जाएगा या अग्रिम जमानत देने के लिए अंतरिम आदेश जारी किया जाएगा:

परंतु जहाँ उच्च न्यायालय या, जैसा भी मामला हो, सत्र न्यायालय ने इस उप-धारा के अंतर्गत कोई अंतरिम आदेश पारित नहीं किया है या अग्रिम जमानत देने के लिए आवेदन को खारिज कर दिया है, यह किसी पुलिस स्टेशन के भारसाधक अधिकारी के लिए स्वतंत्र होगा कि वह ऐसे आवेदन में पकड़े गए आरोप के आधार पर आवेदक को बिना वारंट के गिरफ्तार कर ले।

(1क) जहाँ न्यायालय उपधारा (1) के अधीन अंतरिम आदेश प्रदान करता है, वहाँ वह लोक अभियोजक और पुलिस अधीक्षक को कम से कम

सात दिन का नोटिस तथा ऐसे आदेश की एक प्रति तुरंत तामील कराएगा, ताकि न्यायालय द्वारा आवेदन पर अंतिम रूप से सुनवाई किए जाने के समय लोक अभियोजक को सुनवाई का उचित अवसर दिया जा सके।

(1ख) अग्रिम जमानत चाहने वाले आवेदक की उपस्थिति आवेदन की अंतिम सुनवाई के समय और न्यायालय द्वारा अंतिम आदेश पारित करने के समय अनिवार्य होगी, यदि लोक अभियोजक द्वारा किए गए आवेदन पर न्यायालय न्याय के हित में ऐसी उपस्थिति को आवश्यक समझता है।

(2) जब उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय उपधारा (1) के अधीन निदेश देता है तब वह उस विशिष्ट मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए उन निदेशों में ऐसी शर्तें, जो वह ठीक समझे, सम्मिलित कर सकता है जिनके अन्तर्गत निम्नलिखित भी हैं–

(i) यह शर्त कि वह व्यक्ति पुलिस अधिकारी द्वारा पूछे जाने वाले परिप्रश्नों का उत्तर देने के लिए जैसे और जब अपेक्षित हो, उपलब्ध होगा;

(ii) यह शर्त कि वह व्यक्ति उस मामले के तथ्यों से अवगत किसी व्यक्ति को न्यायालय या किसी पुलिस अधिकारी के समक्ष ऐसे तथ्यों को प्रकट न करने के लिए मनाने के वास्ते प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः उसे कोई उत्प्रेरणा, धमकी या वचन नहीं देगा;

(iii) यह शर्त कि वह व्यक्ति न्यायालय की पूर्व अनुज्ञा के बिना भारत नहीं छोड़ेगा;

(iv) ऐसी अन्य शर्तें जो धारा 437 की उपधारा (3) के अधीन ऐसे अधिरोपित की जा सकती हैं मानो उस धारा के अधीन जमानत दी गई हो।

(3) यदि तत्पश्चात ऐसे व्यक्ति को ऐसे अभियोग पर पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी द्वारा वारंट के बिना गिरफ्तार किया जाता है और वह या तो गिरफ्तारी के समय या जब वह ऐसे अधिकारी की अभिरक्षा में है तब किसी समय जमानत देने के लिए तैयार है, तो उसे जमानत पर छोड़ दिया जाएगा; तथा यदि ऐसे अपराध का संज्ञान करने वाला दंडाधिकारी यह विनिश्चय करता है कि उस व्यक्ति के विरुद्ध प्रथम बार ही वारंट जारी किया जाना चाहिए, तो वह उपधारा (1) के अधीन न्यायालय के निदेश के अनुरूप जमानतीय वारंट जारी करेगा।

(4) इस धारा की कोई बात भारतीय दंड संहिता की धारा 376 की उपधारा (3) या धारा 376कख या धारा 376घख के अधीन अपराध किए

जाने के अभियोग में किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी की किसी भी दशा में लागू नहीं होगी।

439. जमानत के बारे में उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय की विशेष शक्तियाँ– *(1) उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय यह निदेश दे सकता है कि–*

(क) किसी ऐसे व्यक्ति को, जिस पर किसी अपराध का अभियोग है और जो अभिरक्षा में है, जमानत पर छोड़ दिया जाए और यदि अपराध धारा 437 की उपधारा (3) में विनिर्दिष्ट प्रकार का है, तो वह ऐसी कोई शर्त जिसे वह उस उपधारा में वर्णित प्रयोजनों के लिए आवश्यक समझे, अधिरोपित कर सकता है;

(ख) किसी व्यक्ति को जमानत पर छोड़ने के समय दंडाधिकारी द्वारा अधिरोपित कोई शर्त अपास्त या उपांतरित कर दी जाए:

परन्तु उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय किसी ऐसे व्यक्ति की, जो ऐसे अपराध का अभियुक्त है जो अनन्यतः सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय है, या जो यद्यपि इस प्रकार विचारणीय नहीं है, आजीवन कारावास से दंडनीय है, जमानत लेने के पूर्व जमानत के लिए आवेदन की सूचना लोक अभियोजक को उस दशा के सिवाय देगा जब उसकी, ऐसे कारणों से, जो लेखबद्ध किए जाएँगे यह राय है कि ऐसी सूचना देना साध्य नहीं है।

परंतु यह और कि उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय किसी ऐसे व्यक्ति की जो भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की उपधारा (3) या धारा 376 कख या धारा 376घक या धारा 376घख के अधीन विचारणीय किसी अपराध का अभियुक्त है, जमानत लेने के पूर्व जमानत के लिए आवेदन की सूचना ऐसे आवेदन की सूचना की प्राप्ति की तिथि से पंद्रह दिन की अवधि के भीतर लोक अभियोजक को देगा।

(1क) भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की उपधारा (3) या धारा 376 कख या धारा 376धक या धारा 376घख के अधीन व्यक्ति को जमानत के लिए आवेदन की सुनवाई के समय सूचना देने वाले या उसकी ओर से प्राधिकृत किसी व्यक्ति की उपस्थिति बाध्यकर होगी।

(2) उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय, किसी ऐसे व्यक्ति को, जिसे इस अध्याय के अधीन जमानत पर छोड़ा जा चुका है, गिरफ्तार करने का निदेश दे सकता है और उसे अभिरक्षा के लिए सुपुर्द कर सकता है।

18. दं.प्र.सं. की धारा 437 और धारा 439 किसी भी ऐसे व्यक्ति को जमानत देने से संबंधित हैं जो *'गिरफ्तार'* हुआ है या *'अभिरक्षा'* में है। दूसरी ओर, दं.प्र.सं. की धारा 438 न्यायालय को उस व्यक्ति को अग्रिम जमानत देने की शक्ति देती है, जिसे अभी तक *'गिरफ्तार'* नहीं किया गया है या *'अभिरक्षा'* में नहीं लिया गया है। दं.प्र.सं. की धारा 438 के अंतर्गत शक्तियों की व्याख्या करते हुए, जहाँ तक वर्तमान विवाद के लिए प्रासंगिक है, ***गुरबख्श सिंह सिब्बिया*** (पूर्वोक्त) में उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है:

> ***"7.*** *धारा 438 जिस सुविधा को प्रदान करती है, उसे आम तौर पर 'अग्रिम जमानत' के रूप में संदर्भित किया जाता है, ऐसी अभिव्यक्ति जिसका उपयोग विधि आयोग ने अपनी 41वीं रिपोर्ट में किया था। न तो धारा और न ही इसका पार्श्व टिप्पण इसका वर्णन करता है, किंतु अभिव्यक्ति 'अग्रिम जमानत' यह बताने का एक सुविधाजनक तरीका है कि गिरफ्तारी की प्रत्याशा में जमानत के लिए आवेदन करना संभव है। जमानत का कोई भी आदेश, निश्चित रूप से, गिरफ्तारी के समय से ही प्रभावी हो सकता है क्योंकि, जमानत देना, जैसा कि व्हार्टन के लॉ लेक्सिकन में कहा गया है, "गिरफ्तार या कैद किए गए व्यक्ति को उसकी उपस्थिति के लिए ली गई सुरक्षा पर स्वतंत्र करना" है। इस प्रकार, जमानत मूल रूप से कैद से रिहाई है, विशेष रूप से, पुलिस की अभिरक्षा से रिहाई है। गिरफ्तारी का कार्य सीधे तौर पर पुलिस द्वारा गिरफ्तार किए गए व्यक्ति की आवाजाही की स्वतंत्रता को प्रभावित करता है, और आम तौर पर, जमानत का आदेश अभियुक्त को इस शर्त पर स्वतंत्रता देता है कि वह अपनी विचारण कार्यवाही के लिए उपस्थित होगा। व्यक्तिगत बंधपत्र, प्रतिभूत्व बंधपत्र और ऐसे अन्य तरीके वे साधन हैं जिनके द्वारा अभियुक्त से यह आश्वासन प्राप्त किया जाता है कि यद्यपि उसे जमानत पर रिहा कर दिया गया है, लेकिन वह उस अपराध या अपराधों, जिसका उस पर आरोप लगाया गया है और जिसके लिए*

उसे गिरफ्तार किया गया था, के विचारण में स्वयं उपस्थित होगा। जमानत के सामान्य आदेश और अग्रिम जमानत के आदेश के बीच अंतर यह है कि जहाँ पहले वाला आदेश गिरफ्तारी के बाद दिया जाता है और इसलिए इसका अर्थ पुलिस की अभिरक्षा से रिहाई है, वहीं बाद वाला गिरफ्तारी की प्रत्याशा में दिया जाता है और इसलिए वह गिरफ्तारी के समय ही प्रभावी होता है। पुलिस अभिरक्षा गैर-जमानती अपराधों के लिए गिरफ्तारी का एक अपरिहार्य सहवर्ती है। अग्रिम जमानत का आदेश, एक प्रकार से, उस अपराध या उन अपराधों के लिए गिरफ्तारी के बाद पुलिस अभिरक्षा के विरुद्ध एक बीमा होता है, जिसके संबंध में आदेश जारी किया जाता है। दूसरे शब्दों में, गिरफ्तारी के बाद जमानत के आदेश के विपरीत, यह एक पूर्व-गिरफ्तारी विधिक प्रक्रिया है जो निर्देश देती है कि यदि जिस व्यक्ति के पक्ष में इसे जारी किया गया है, उसके बाद यदि उसे उसी आरोप पर गिरफ्तार किया जाता है जिसके संबंध में निर्देश जारी किया गया है, तो उसे जमानत पर रिहा कर दिया जाएगा। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 46(1) जो इस बात से संबंधित है कि गिरफ्तारी कैसे की जानी चाहिए, यह प्रावधान करती है कि गिरफ्तारी करते समय, पुलिस अधिकारी या अन्य व्यक्ति "गिरफ्तार किए जाने वाले व्यक्ति के शरीर को वास्तव में स्पर्श करेगा या उसे बंधक बनाएगा, जब तक कि अभिरक्षा में लिए जाने के लिए शब्द या क्रिया द्वारा समर्पण न किया गया हो"। धारा 438 के अंतर्गत निर्देश का उद्देश्य इस 'स्पर्श' या परिरोध से सशर्त प्रतिरक्षा प्रदान करना है।

XXX

***12.** हम विद्वान अतिरिक्त महा सॉलिसिटर की प्रस्तुतियों या उन बाधाओं को समग्रता में स्वीकार करने में स्वयं को असमर्थ पाते हैं जिन्हें उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने धारा 438 द्वारा प्रदत्त शक्ति पर लागू किया है। धारा 438 का खंड (1) व्यापक और अयोग्य शब्दों में जोड़ा गया है। किसी भी ज्ञात संरचना सिद्धांत के अनुसार, व्यापकता और आयाम के शब्दों को सामान्यतः इस प्रकार नहीं हटाया जाना चाहिए कि वे कानून की भाषा में उन अवरोधों और शर्तों को शामिल कर लें, जिन्हें विधानमंडल ने स्वयं अधिरोपित करना उचित या आवश्यक नहीं समझा। यह विशेष रूप से तब सत्य है जब विचाराधीन कानूनी उपबंध, व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार*

जैसे मूल्यवान अधिकार को सुरक्षित करने के लिए बनाया गया है और इसमें निर्दोषता की उपधारणा के रूप में हमारे आपराधिक न्यायशास्त्र में हितकर और गहन रूप से निहित उपधारणा का अनुप्रयोग शामिल है। यद्यपि धारा 438 द्वारा पहली बार अग्रिम जमानत के लिए आवेदन करने का अधिकार प्रदान किया गया था, लेकिन उस उपबंध को अधिनियमित करते समय विधायिका ने जमानत के लिए आवेदन करने के अधिकार के मामले में अभूतपूर्व कदम उठाने के अर्थ में स्पष्ट तौर पर नहीं लिखा था। इसके पहले संहिता के दो समान उपबंध थे: धारा 437 जो सत्र न्यायालय और उच्च न्यायालय के अतिरिक्त अन्य न्यायालयों की गैर-जमानती मामलों में जमानत देने की शक्ति से संबंधित है और धारा 439 जो जमानत के संबंध में उच्च न्यायालय और सत्र न्यायालय की "विशेष शक्तियों" से संबंधित है। धारा 437 का पूरा भाग जमानत देने के लिए कुछ न्यायालयों की शक्ति पर प्रतिबंधों से घिरा हुआ है...।

...धारा 437 और 439 के उपबंधों ने विधानमंडल के लिए धारा 438 को अधिनियमित करते समय नकल करने के लिए एक सुविधाजनक प्रतिमान प्रस्तुत किया। यदि उसने ऐसा नहीं किया है और उस पैटर्न से अलग हो गया है जिसे आवश्यक संशोधनों के साथ आसानी से अपनाया जा सकता था, तो यह मानकर कि यह किसी विशेष या विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति के लिए नहीं था, इस विचलन को उसका पूर्ण प्रभाव देने से इनकार करना गलत होगा। हमारी राय में, यह विचलन सोच-समझकर और उद्देश्यपूर्ण तरीके से किया गया था : कम से कम आंशिक रूप से, विधि आयोग की 41वीं रिपोर्ट के कारण, जिसने उच्च न्यायालय और सत्र न्यायालय को अग्रिम जमानत देने में सक्षम बनाने के लिए संहिता में उपबंध जोड़ने की आवश्यकता की ओर इशारा करते हुए, पैरा 39.9 में कहा था कि उसने "कानून में कुछ शर्तें निर्धारित करने के प्रश्न पर सावधानी से विचार किया था, जिनके अंतर्गत ही अग्रिम जमानत दी जा सकती थी" लेकिन वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा था कि ऐसी जमानत देने का प्रश्न "न्यायालय के विवेक पर" छोड़ दिया जाना चाहिए और इसे कानूनी उपबंध द्वारा बाधित नहीं किया जाना चाहिए, क्योंकि विवेकाधिकार उच्च न्यायालयों को प्रदान किया जा रहा था, जिनसे न्यायिक रूप से इसका प्रयोग करने की अपेक्षा की जाती थी। विधानमंडल ने अग्रिम जमानत देने के लिए उच्च न्यायालय और सत्र

न्यायालय को व्यापक विवेकाधिकार प्रदान किया, क्योंकि उसने स्पष्ट रूप से महसूस किया कि, पहले तो, उन शर्तों को सूचीबद्ध करना कठिन होगा, जिनके अंतर्गत अग्रिम जमानत दी जानी चाहिए या नहीं दी जानी चाहिए, और दूसरे, क्योंकि इसका उद्देश्य उच्चतर न्यायालयों को अग्रिम जमानत के स्वरूप में राहत प्रदान करने में कुछ हद तक स्वतंत्रता प्रदान करना था। इसीलिए, धारा 437 और 439 की शर्तों से विचलन करके, धारा 438(1) में इस भाषा का उपयोग किया गया है कि उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय "यदि वह उचित समझे" तो निर्देश दे सकता है कि आवेदक को जमानत पर रिहा किया जाए। धारा 438 की उप-धारा (2) अग्रिम जमानत देने के लिए व्यापक विवेकाधीन शक्ति प्रदान करने की उसी विधायी आशय की एक और स्पष्ट अभिव्यक्ति है। इसमें प्रावधान है कि उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय अग्रिम जमानत देने के लिए निर्देश जारी करते समय, "विशेष मामले के तथ्यों के आलोक में ऐसे निर्देशों में ऐसी शर्तें शामिल कर सकता है, जैसा वह ठीक समझे", जिसमें उपधारा (2) के खंड (i) से (iv) में निर्धारित शर्तें भी शामिल हैं। विधायी आशय का प्रमाण सबसे अच्छी तरह से उस भाषा में पाया जा सकता है जिसका प्रयोग विधानमंडल करता है। अस्पष्टताओं को निस्संदेह बाहरी सहायता का सहारा लेकर हल किया जा सकता है, लेकिन धारा 438 में जितने व्यापक और स्पष्ट शब्दों का उपयोग किया गया है, उनका पूरा प्रभाव होना चाहिए, विशेष तौर पर तब जब ऐसा करने से इनकार करने से व्यक्ति की स्वतंत्रता पर अनुचित रूप से आघात पहुँचे और निर्दोषता की उपधारणा बने। यह ध्यान में रखना होगा कि अग्रिम जमानत तब माँगी जाती है जब इस आरोप पर गिरफ्तारी की आशंका होती है कि आवेदक ने गैर-जमानती अपराध किया है। एक व्यक्ति जिसने अभी तक गिरफ्तार होकर अपनी स्वतंत्रता नहीं खोई है, गिरफ्तारी की स्थिति में स्वतंत्रता की माँग करता है। यही वह चरण है, जहाँ तक संभव हो, उसकी स्वतंत्रता की रक्षा करना तथा यह मान लेना कि वह निर्दोष है, पूरी तरह से आवश्यक है। वास्तव में, जिस चरण में आम तौर पर अग्रिम जमानत की माँग की जाती है, वह उस स्थिति के साथ विचित्र असमानता लाती है जिसमें गैर-जमानती अपराध के लिए गिरफ्तार किया गया व्यक्ति जमानत माँगता है। बाद की स्थिति में, न्यायालय के पास पर्याप्त जानकारी उपलब्ध होती है, या इसके द्वारा माँगी जा सकती

है, जिसके प्रकाश में वह राहत दे सकता है या इनकार कर सकता है और इसे प्रदान करते समय, धारा 437 में उल्लिखित सभी या किसी भी शर्त को अधिरोपित करके इसे संशोधित कर सकता है।

13. *इसका अर्थ यह नहीं है कि अग्रिम जमानत यदि दी जाती है, तो बिना किसी शर्त के दी जानी चाहिए। यह स्पष्ट रूप से धारा 438 की शर्तों के विपरीत होगा। यद्यपि उस धारा की उपधारा (1) में कहा गया है कि न्यायालय "यदि वह उचित समझे" तो जमानत के लिए आवश्यक निर्देश जारी कर सकता है, उपधारा (2) न्यायालय को निर्देश में ऐसी शर्तें शामिल करने की शक्ति प्रदान करती है, जिन्हें वह विशेष मामले के तथ्यों के आलोक में ठीक समझे, जिसमें उस उपधारा के खंड (i) से (iv) में उल्लिखित शर्तें भी शामिल हैं। इसलिए विवाद यह नहीं है कि क्या न्यायालय के पास अग्रिम जमानत देते समय शर्तें अधिरोपित करने की शक्ति है या नहीं। इसके पास स्पष्टतः और विशेष रूप से वह शक्ति है। वास्तविक प्रश्न यह है कि क्या निर्माण की प्रक्रिया के द्वारा, न्यायिक विवेक की व्यापकता, जो उच्च न्यायालय और सत्र न्यायालय को अग्रिम जमानत देते समय ऐसी शर्तें अधिरोपित करने के लिए दी गई है, जिसे वे उचित समझें, को उन कानूनी शर्तों को पढ़कर कम कर दिया जाना चाहिए, जो उनमें नहीं पाई जाती हैं, जैसे कि उच्च न्यायालय द्वारा विकसित या विद्वान अतिरिक्त महा सॉलिसिटर द्वारा प्रचारित। हमारा उत्तर, स्पष्ट और प्रभावी रूप से, नकारात्मक है। उच्च न्यायालय और सत्र न्यायालय, जिसके समक्ष अग्रिम जमानत के लिए आवेदन किया गया है, को अपने न्यायिक विवेक का प्रयोग करते हुए जमानत देने के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया जाना चाहिए, यदि वे मामले के विशेष तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर तथा मामले की आवश्यकतानुसार ऐसी शर्तों पर ऐसा करना उचित समझते हैं। इसी तरह, उन्हें जमानत से इनकार करने के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया जाना चाहिए यदि मामले की परिस्थितियाँ धारा 437 में उल्लिखित विचारों के समान विचार पर या जिन्हें आम तौर पर संहिता की धारा 439 के अंतर्गत प्रासंगिक माना जाता है।*

XXXX

20. *उच्च न्यायालय की तीसरी प्रतिपादना पर किसी भी बड़े विवरण में विचार करना अनावश्यक है क्योंकि हमने पहले ही संकेत*

दिया है कि धारा 438 में उल्लिखित सीमाओं को धारा 437 में पढ़ने का कोई औचित्य नहीं है। उच्च न्यायालय का कहना है कि ऐसी सीमाएँ धारा 438 में अंतर्निहित हैं, लेकिन इस धारा में ऐसे कोई निहितार्थ नहीं हैं या नहीं पढ़े जा सकते हैं। धारा की विपुलता को इसकी पूरी स्वतंत्रता दी जानी चाहिए।

XXXX

***35.** संहिता की धारा 438 (1) एक शर्त निर्धारित करती है जिसे अग्रिम जमानत दिए जाने से पहले पूरा किया जाना चाहिए। आवेदक को यह दिखाना होगा कि उसके पास यह "विश्वास करने का कारण" है कि उसे गैर-जमानती अपराध के लिए गिरफ्तार किया जा सकता है। "विश्वास करने का कारण" अभिव्यक्ति के उपयोग से पता चलता है कि यह विश्वास कि आवेदक को इस तरह से गिरफ्तार किया जा सकता है, उचित आधारों पर आधारित होना चाहिए। केवल "डर" "विश्वास" नहीं है, जिस कारण से आवेदक के लिए यह दर्शाना पर्याप्त नहीं है कि उसे किसी प्रकार की अस्पष्ट आशंका है कि कोई उसके विरुद्ध आरोप लगाने जा रहा है, जिसके अनुसरण में उसे गिरफ्तार किया जा सकता है। जिन आधारों पर आवेदक का विश्वास है कि उसे गैर-जमानती अपराध के लिए गिरफ्तार किया जा सकता है, वह न्यायालय द्वारा निष्पक्ष रूप से जाँच करने में सक्षम होना चाहिए क्योंकि केवल तभी न्यायालय यह निर्धारित कर सकता है कि क्या आवेदक के पास यह विश्वास करने का कारण है कि उसे इस तरह से गिरफ्तार किया जा सकता है। इसलिए, धारा 438(1) का अस्पष्ट और सामान्य आरोपों के आधार पर अवलंब नहीं लिया जा सकता है, जैसे कि संभावित गिरफ्तारी के विरुद्ध स्वयं को हमेशा के लिए तैयार करना। अन्यथा, अग्रिम जमानत के लिए आवेदनों की संख्या किसी भी दर पर, वयस्क आबादी जितनी बड़ी होगी। अग्रिम जमानत व्यक्ति की स्वतंत्रता को सुरक्षित करने का एक साधन है; यह न तो अपराध करने का पासपोर्ट है और न ही किसी भी और सभी प्रकार के आरोपों के विरुद्ध ढाल है, चाहे वे संभावित हों या असंभावित।*

***36.** दूसरे, यदि अग्रिम जमानत के लिए उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय में आवेदन किया जाता है तो उसे स्वयं इस प्रश्न पर*

विचार करना चाहिए तथा निर्णय करना चाहिए कि क्या प्रश्नगत मामला ऐसी राहत प्रदान करने के योग्य है। जब भी कोई ऐसा अवसर आए, तो वह इस मामले को धारा 437 के अंतर्गत संबंधित दंडाधिकारी के निर्णय पर नहीं छोड़ सकता। ऐसा करने से धारा 438 का मूल उद्देश्य ही विफल हो जाएगा।"

19. ***भरत चौधरी*** (पूर्वोक्त) के मामले में, उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि दं.प्र.सं. की धारा 438 के अंतर्गत शक्ति उच्च न्यायालय और सत्र न्यायालय के पास उपलब्ध है, तब भी जब संज्ञान लिया गया हो या आरोप पत्र दायर किया गया हो। मैं निर्णय से निम्नलिखित अंश को उद्धृत करूँगा:

*"**4.** हालाँकि, प्रत्यर्थी राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री बी.बी. सिंह ने एक विधिक आपत्ति जताई। उनका प्रतिवाद था कि चूँकि प्रथम दृष्टया न्यायालय ने संबंधित अपराध का संज्ञान ले लिया है, इसलिए इस न्यायालय द्वारा भी अग्रिम जमानत देने के लिए दं.प्र.सं. की धारा 438 का उपयोग नहीं किया जा सकता है और अपीलार्थीगण के पास उपलब्ध एकमात्र उपाय यह है कि वे विचारण न्यायालय में जाकर आत्मसमर्पण करें, उसके बाद दं.प्र.सं. की धारा 439 के अंतर्गत नियमित जमानत के लिए आवेदन करें। इस प्रतिवाद के समर्थन में विद्वान अधिवक्ता ने सलाउद्दीन अब्दुलसमद शेख बनाम महाराष्ट्र राज्य (1996) 1 एससीसी 667 के मामले में इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया।*

***5.** यदि प्रत्यर्थी राज्य के विद्वान अधिवक्ता के तर्कों को स्वीकार किया जाता है, तो प्रत्येक मामले में, जहाँ एक गैर-जमानती अपराध की शिकायत की जाती है और सक्षम न्यायालय द्वारा संज्ञान लिया जाता है, तो इस न्यायालय सहित संहिता के अंतर्गत हर न्यायालय को दं.प्र.सं. की धारा 438 के अंतर्गत अग्रिम जमानत देने की शक्ति से वंचित कर दिया जाएगा।*

***6.** हमें नहीं लगता कि दं.प्र.सं. में धारा 438 को शामिल करते समय विधानमंडल का यह इरादा था, जो इस प्रकार है:*

"438. (1) जब किसी व्यक्ति के पास यह विश्वास करने का कारण हो कि उसे गैर-जमानती अपराध करने के आरोप में गिरफ्तार किया जा सकता है, तो वह इस धारा के अंतर्गत निर्देश के लिए उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय को आवेदन कर सकता है; और वह न्यायालय, यदि उचित समझता है तो उसे गिरफ्तारी की स्थिति में जमानत पर रिहा कर दिया जाएगा।"

7. *दं.प्र.सं. की धारा 438 के इस भाग के परिशीलन से, हम सत्र न्यायालय, उच्च न्यायालय या इस न्यायालय द्वारा उपयुक्त मामले में इस शक्ति के प्रयोग के संबंध में कोई प्रतिबंध नहीं पाते हैं, भले ही संज्ञान लिया गया हो या आरोप पत्र दायर किया गया हो। धारा 438 का उद्देश्य विचारण-पूर्व गिरफ्तारी और निरोध द्वारा अभियुक्त व्यक्तियों के अनुचित उत्पीड़न को रोकना है। हमारी राय में, यह तथ्य कि न्यायालय ने या तो शिकायत का संज्ञान ले लिया है या जाँच एजेंसी ने आरोप-पत्र दायर कर दिया है, अपने आप में संबंधित न्यायालयों को उचित मामलों में अग्रिम जमानत देने से नहीं रोकेगा। अपराध की गंभीरता एक महत्वपूर्ण कारक है जिसे इस तरह की अग्रिम जमानत देते समय ध्यान में रखा जाना चाहिए, साथ ही अभिरक्षामें पूछताछ की आवश्यकता भी है, लेकिन ये केवल ऐसे कारक हैं जिन्हें संबंधित न्यायालयों को अग्रिम जमानत देने के लिए याचिका पर विचार करते समय ध्यान में रखना चाहिए और संज्ञान लेने या आरोप-पत्र दायर करने के तथ्य को अपने आप में अग्रिम जमानत देने के विरुद्ध निषेध नहीं माना जा सकता है। हमारी राय में, न्यायालय अर्थात् सत्र न्यायालय, उच्च न्यायालय या इस न्यायालय के पास दं.प्र.सं. की धारा 438 के अंतर्गत गैर-जमानती अपराधों में अग्रिम जमानत देने के लिए आवश्यक शक्ति निहित है, भले ही संज्ञान लिया गया हो या आरोप-पत्र दायर किया गया हो, बशर्ते मामले के तथ्यों के अनुसार न्यायालय को ऐसा करने की आवश्यकता हो।*

XXXX

> ***10.*** *उपरोक्त टिप्पणियों से, हम दं.प्र.सं. की धारा 438 के अंतर्गत अग्रिम जमानत देने के लिए सशक्त न्यायालयों की शक्ति पर कोई प्रतिबंध नहीं समझ पा रहे हैं।*
>
> ***11.*** *हम उक्त मामले में इस न्यायालय की टिप्पणियों से सम्मानपूर्वक सहमत हैं कि अग्रिम जमानत की अवधि सामान्य रूप से तब तक सीमित होनी चाहिए जब तक कि विचारण न्यायालय के पास इस तरह के आदेश पारित करने के लिए आवश्यक सामग्री न हो और वह अपने समक्ष उपलब्ध सामग्री को उचित समझे। अनिर्दिष्ट अवधि के लिए व्यापक अग्रिम जमानत के संबंध में केवल यही एक प्रतिबंध है। हमारी राय में यह निर्णय प्रत्यर्थी राज्य के विद्वान अधिवक्ता की ओर से दिए गए इस चरम तर्क का समर्थन नहीं करता है कि दं.प्र.सं. की धारा 438 में निर्दिष्ट न्यायालयों को उक्त धारा के अंतर्गत अपनी शक्ति से वंचित किया जाता है, जहाँ या तो संबंधित न्यायालय द्वारा संज्ञान लिया जाता है या उचित न्यायालय के समक्ष आरोप-पत्र दायर किया जाता है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, यह केवल उस उद्देश्य को विफल करने के समान होगा जिसके लिए वर्ष 1973 में दं.प्र.सं. में धारा 438 पेश की गई थी।"*

20. ***रवींद्र सक्सेना*** (पूर्वोक्त) मामले में उच्चतम न्यायालय ने दोहराया कि अभियुक्त को किसी भी समय किसी अग्रिम जमानत दी जा सकती है, जब तक कि अभियुक्त को गिरफ्तार नहीं किया गया हो। उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय दं.प्र.सं. की धारा 438 के अंतर्गत अपनी शक्तियों का प्रयोग करने से इनकार नहीं कर सकते हैं और मामले को केवल इस आधार पर दंडाधिकारी पर नहीं छोड़ सकते हैं कि *चालान* अब प्रस्तुत किया गया है।

21. इस न्यायालय की खंड पीठ ने भी ***पी.वी. नरसिम्हा राव*** (पूर्वोक्त) मामले में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा किए गए संदर्भ पर, यह अभिनिर्धारित

किया है कि दं.प्र.सं. की धारा 438 के अंतर्गत एक आवेदन तब भी संधार्य होगा, जब अभियुक्त की उपस्थिति के लिए न्यायालय द्वारा समन जारी किया गया हो। मैं निर्णय से निम्नलिखित अंश को उद्धृत करूँगा:

> ***"3.*** *उपरोक्त से यह स्पष्ट होता है कि इस पीठ के समक्ष न्यायनिर्णयन के लिए एकमात्र छोटा मुद्दा यह है कि क्या दंड प्रक्रिया संहिता (संक्षेप में "दं.प्र.सं.") की धारा 438 के अंतर्गत अग्रिम जमानत देने के लिए आवेदन उस मामले में भी संधार्य होगा जहाँ न्यायालय ने केवल अभियुक्त की उपस्थिति के लिए समन जारी करने का विकल्प चुना है?*
>
> *XXXX*
>
> ***20.*** *विद्वान लोक अभियोजक, श्री दत्त ने बलपूर्वक प्रतिवाद दिया है कि चूँकि वर्तमान मामले में अभियुक्त व्यक्ति के विरुद्ध समन जारी किए गए हैं, इसलिए दं.प्र.सं. की धारा 438 के अंतर्गत आवेदन संधार्य नहीं होगा। हमें खेद है कि हम विद्वान अधिवक्ता के प्रतिवाद से सहमत नहीं हो पा रहे हैं।*
>
> ***21.*** *हम पहले ही ऊपर देख चुके हैं कि दं.प्र.सं. की धारा 438 के अंतर्गत किसी आवेदन पर विचार करते समय न्यायालयों को बहुत व्यापक शक्तियाँ प्राप्त होती हैं, जबकि अधीनस्थ न्यायालयों की शक्तियाँ बहुत अधिक प्रतिबंधों से घिरी होती हैं। इस प्रकार विद्वान लोक अभियोजक ने तर्क दिया कि वर्तमान आवेदन इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए संधार्य नहीं होगा कि न्यायालय ने स्वयं गिरफ्तारी वारंट जारी करने का निर्णय नहीं लिया है; इसके बजाय विद्वान विशेष न्यायाधीश ने याचिकाकर्ता की उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए समन के रूप में एक प्रक्रिया जारी की है। इसलिए यह किसी भी तरह से नहीं कहा जा सकता है कि यहाँ गिरफ्तारी की आशंका है। उक्त प्रतिविरोध को सामने रखते हुए विद्वान लोक अभियोजक इस तथ्य से अनजान है कि याचीगण के विरुद्ध विद्वान विशेष न्यायाधीश के समक्ष पहले ही एक आरोप पत्र दायर किया जा चुका है। उन्हें न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने के लिए बुलाया गया है। इस प्रकार उपरोक्त परिस्थितियों में यह कहा जा सकता है कि*

अभियुक्त व्यक्तियों के मन में कोई आशंका नहीं है कि उन्हें गिरफ्तार नहीं किया जा सकता है? हमें लगता है कि उपरोक्त परिस्थितियों में आशंका बिल्कुल वास्तविक है और याचीगण की कल्पना की उपज नहीं है। याचीगण पर संज्ञेय अपराध करने का आरोप लगाया गया है। इस प्रकार उन्हें पुलिस के किसी भी अधिकारी द्वारा किसी भी समय गिरफ्तार किया जा सकता है। उन्हें न्यायालय के कहने पर गिरफ्तार भी किया जा सकता है। दं.प्र.सं. की धारा 438 (3) ऐसी स्थिति को अनुध्यात करती है और ऐसी संभावना के लिए प्रावधान करती है। हम अपनी बात को सिद्ध करने के लिए इसे फिर से प्रस्तुत करने के इच्छुक हैं। यह निम्नानुसार निर्धारित करता है:

> *"यदि ऐसे व्यक्ति को उसके बाद ऐसे आरोप पर किसी पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी द्वारा बिना वारंट के गिरफ्तार किया जाता है, और वह गिरफ्तारी के समय या ऐसे अधिकारी की अभिरक्षा में रहते हुए किसी भी समय जमानत देने के लिए तैयार होता है, तो उसे जमानत पर रिहा कर दिया जाएगा; और यदि ऐसे अपराध का संज्ञान लेने वाला दंडाधिकारी यह निर्णय लेता है कि उस व्यक्ति के विरुद्ध प्रथम दृष्टया वारंट जारी किया जाना चाहिए, तो वह उपधारा (1) के अधीन न्यायालय के निर्देश के अनुरूप जमानतीय वारंट जारी करेगा।"*

22. *इस प्रकार यदि इस मामले में याचिकाकर्ता अंतरिम संरक्षण के बिना रहे हैं, जो इस न्यायालय ने उन्हें प्रदान किया है, तो उन्हें पुलिस द्वारा या न्यायालय के कहने पर भी गिरफ्तार किया जा सकता था।*

XXXX

28. *उपरोक्त परिस्थितियों में, हम आवेदनों को संधार्य मानते हैं। संदर्भ का उत्तर उसी के अनुसार दिया जाता है।"*

22. जब उपर्युक्त मामला इस न्यायालय की खंड पीठ द्वारा उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर पर विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष सूचीबद्ध किया गया था, तो विद्वान एकल न्यायाधीश ने दिनांक 03.01.1997 के अपने निर्णय ***पी.वी. नरसिम्हा राव*** (पूर्वोक्त) में निम्नानुसार दोहराया:

> *"**14.** संहिता की धारा 438 के अंतर्गत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते समय, न्यायालय द्वारा ध्यान में रखा जाने वाला मुख्य कारक यह है कि गैर-जमानती अपराध के अभियुक्त व्यक्ति को पुलिस के हाथों या दंडाधिकारी के कहने पर गिरफ्तार किए जाने की आशंका है। एक व्यक्ति जिसने अभी तक गिरफ्तार होकर अपनी स्वतंत्रता नहीं खोई है, गिरफ्तारी की स्थिति में स्वतंत्रता की माँग करता है। यही वह चरण है जहाँ प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, उसकी स्वतंत्रता की रक्षा करना अनिवार्य है।"*

23. ***दीपक आनंद*** (पूर्वोक्त) मामले में, इस न्यायालय के एक अन्य विद्वान एकल न्यायाधीश ने ***पी.वी. नरसिम्हा राव*** (पूर्वोक्त) में उपर्युक्त निर्णय और ऊपर संदर्भित अन्य निर्णयों पर भरोसा करते हुए फिर से अभिनिर्धारित किया कि दं.प्र.सं. की धारा 438 के अंतर्गत प्रावधान संधार्य होगा, भले ही दंडाधिकारी द्वारा शिकायत पर समन जारी किया गया हो। यह निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया था:

> *"**6.** यह प्रश्न कि क्या धारा 438 सीआरपीसी के तहत अग्रिम जमानत देने की शक्ति से निहित न्यायालय संज्ञान जारी करने की प्रक्रिया के न्यायालय के आदेश की पृष्ठभूमि में ऐसे अधिकार क्षेत्र का प्रयोग कर सकता है, अनिर्णीत विषय नहीं है। इस न्यायालय की एक खंड पीठ ने, नवम्बर 1996 में, पी.वी. नरसिम्हा राव बनाम राज्य (सीबीआई), 1997 एससीसी ऑनलाइन दिल्ली 19 नामक अपने निर्णय द्वारा, विधि के ठीक उसी प्रश्न पर संदर्भ का उत्तर दिया था, जो याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत प्रश्न के विपरीत था। यह ध्यान देने योग्य है कि उस मामले में भी याचिकाकर्ता दंडाधिकारी के न्यायालय द्वारा उसके विरुद्ध जारी समन को देखते हुए अग्रिम जमानत देने के लिए इस न्यायालय में आया था। खंड पीठ ने विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा किए गए संदर्भ का उत्तर देते हुए अन्य बातों के साथ-साथ यह टिप्पणी की थी कि जिस व्यक्ति के विरुद्ध संज्ञेय और गैर-जमानती अपराध के आरोप लगाए गए हैं, वह पुलिस द्वारा गिरफ्तारी या न्यायालय के हाथों भी गिरफ्तारी की आशंका कर सकता है। यह उल्लेख किया गया कि दं.प्र.सं. की धारा 438 में प्रयोग की गई भाषा अर्थात् "यह विश्वास करने का कारण है कि उसे आरोप*

पर गिरफ्तार किया जा सकता है" स्पष्ट और असंदिग्ध है। दं.प्र.सं. की धारा 438 के अंतर्गत याचिका पर विचार करते समय न्यायालय मामले के गुणागुण के आधार पर जाता है, न कि दंडाधिकारी द्वारा पारित आदेश की प्रकृति के आधार पर, जिसमें अभियुक्त को जमानती या गैर-जमानती वारंट के माध्यम से समन करने का विकल्प चुना गया है। यह भी उल्लेख किया गया कि दं.प्र.सं. की धारा 438(3) एक ऐसी स्थिति को अनुध्यात करती है जहाँ गिरफ्तारी न्यायालय के कहने पर की जा सकती है और इस प्रकार यह अनिवार्य करता है कि यदि संज्ञान का ऐसा आदेश पारित किया जाता है और दंडाधिकारी यह निर्णय लेता है कि उसके कहने पर वारंट जारी किया जाना चाहिए, तो ऐसा वारंट दं.प्र.सं. की धारा 438(1) के अंतर्गत न्यायालय के निर्देश के अनुरूप जमानती वारंट होना चाहिए।

***7.** भारत चौधरी बनाम बिहार राज्य, (2003) 8 एससीसी 77 और रवींद्र सक्सेना बनाम राजस्थान राज्य, (2010) 1 एससीसी 684 में उच्चतम न्यायालय के निर्णय, याचिकाकर्ता द्वारा तर्क दिए जाने के विपरीत तय की जा रही विधि के उदाहरण के रूप में उद्धृत करने के लिए पर्याप्त हैं।"*

24. प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने *'गिरफ्तारी'* और *'अभिरक्षा'* के बीच जो सूक्ष्म अंतर स्थापित करने का प्रयास किया है, वह भी विधि की उपरोक्त स्थिति को नकार नहीं सकता। हालाँकि, प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि दं.प्र.सं. की धारा 438 के प्रयोजनों के लिए गिरफ्तारी केवल कार्यकारी या एक पुलिस अधिकारी द्वारा की जा सकती है और ऊपर उल्लिखित निर्णय स्पष्ट रूप से इसके विपरीत संकेत देते हैं। किसी अभियुक्त की गिरफ्तारी और उसे अभिरक्षा में लेना, शिकायत/अंतिम रिपोर्ट का संज्ञान लेने और अभियुक्त को समन जारी करने के लिए न्यायालय के समक्ष उसकी उपस्थिति पर भी हो

सकता है; इस संबंध में ***पी.वी. नरसिम्हा राव*** (पूर्वोक्त) और ***दीपक आनंद*** (पूर्वोक्त) में इस न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा किया जा सकता है।

25. ***दीपक महाजन*** (पूर्वोक्त) मामले में उच्चतम न्यायालय ने टिप्पणी की कि किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी उसे न्यायिक अभिरक्षा में लेने के लिए एक पूर्ववर्ती शर्त है। दंडाधिकारी द्वारा संबंधित व्यक्ति की उपस्थिति या समर्पण पर गिरफ्तारी के बाद व्यक्ति को न्यायिक अभिरक्षा में लिया जाता है।

26. प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि आवेदक समन के उत्तर में विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष पेश होने के बाद जमानत के लिए आवेदन कर सकते हैं। हालाँकि, इस तरह का आवेदन केवल तभी संधार्य होगा जब पहले, आवेदकों को विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा *'गिरफ्तार'* किया जाता है या *'अभिरक्षा'* में लिया जाता है। दं.प्र.सं. की धारा 439 लागू करने के लिए, अभियुक्त की *'गिरफ्तारी'* या *'अभिरक्षा'* एक पूर्व शर्त है। इसलिए, इसे दूसरे शब्दों में कहें तो, यह प्रत्यर्थी का मामला है कि एक बार आरोप-पत्र दायर करने या शिकायत दर्ज करने के बाद, जिसका संज्ञान लिया जाता है, दं.प्र.सं. की धारा 438 के उपबंध उपलब्ध नहीं रहेंगे और अभियुक्त को गिरफ्तारी की बदनामी भुगतनी होगी, भले ही पूरे जाँच के दौरान उसे जाँच एजेंसी द्वारा गिरफ्तार नहीं किया गया हो। यह उच्चतम न्यायालय और इस न्यायालय के उपर्युक्त निर्णयों के विपरीत होगा, जिसमें स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया गया है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अंतर्गत

शक्तियाँ तब भी उपलब्ध होंगी, जब आरोप-पत्र दायर कर दिया गया हो या दंडाधिकारी द्वारा शिकायत पर संज्ञान ले लिया गया हो।

27. अग्रिम जमानत के लिए आवेदक(कों) के आवेदन पर विचार करते समय लागू होने वाले सिद्धांतों की बात करें तो इसमें कोई दो राय नहीं है कि आवेदक(कों) को यह दर्शाना होगा कि उनके पास यह *'विश्वास करने का कारण'* है कि उन्हें गिरफ्तार किया जा सकता है। जैसा कि ***गुरबख्श सिंह सिब्बिया*** (पूर्वोक्त) में उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है, यह विश्वास कि आवेदक(कों) को गिरफ्तार किया जा सकता है, उचित आधार पर आधारित होना चाहिए, न कि केवल *'डर'* या *'अस्पष्ट आशंका'* पर। मेरी राय में वर्तमान मामले में आवेदक(कों) ने उपर्युक्त कसौटी पूरी की है। आवेदक(ओं) के विद्वान अधिवक्ता(गण) ने इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों पर भरोसा व्यक्त किया है जिसमें अभियुक्त, जिसे उसी दंडाधिकारी द्वारा इसी तरह समन किया गया था, को अभिरक्षा में लिया गया था और इस न्यायालय द्वारा जमानत दिए जाने से पहले उसे लंबे समय तक कारावास में रहने की बदनामी का सामना करना पड़ा था।

28. जैसा कि इस न्यायालय ने ***पी.वी. नरसिम्हा राव*** (पूर्वोक्त) और ***दीपक आनंद*** (पूर्वोक्त) में अभिनिर्धारित किया है, केवल इसलिए कि आवेदक(कों) को समन जारी किया गया है, यह नहीं कहा जा सकता है कि उनके पास यह विश्वास करने का कोई कारण नहीं है कि ऐसे समन के उत्तर में विद्वान

विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने पर उन्हें गिरफ्तार/अभिरक्षा में ले लिया जाएगा।

29. जहाँ तक गुणागुण का प्रश्न है, ***सतेंद्र कुमार अंतिल*** (पूर्वोक्त) में, उच्चतम न्यायालय ने उन मामलों को 'श्रेणी ग' में रखा था, जहाँ जमानत के उपबंधों के अनुपालन की अतिरिक्त शर्तों को पूरा किया जाना है, जिसमें अधिनियम की धारा 212 (6) भी शामिल है। यह अभिनिर्धारित किया गया कि जहाँ अभियोजन पक्ष द्वारा अभियुक्त को जानबूझकर गिरफ्तार नहीं किया गया है, वहाँ न्यायालय के कहने पर अभियुक्त की आगे गिरफ्तारी की कोई आवश्यकता नहीं है। मैं निर्णय से निम्नलिखित अंश को उद्धृत करूँगा:

> *"**89.** हम एक पहलू पर स्पष्टीकरण देंगे जो संहिता की धारा 170 की व्याख्या से संबंधित है। अन्य अपराधों के लिए की गई हमारी चर्चा इन मामलों पर भी लागू होगी। इस स्थिति को स्पष्ट करने के लिए, हम यह मान सकते हैं कि यदि कोई अभियुक्त पहले से ही कारावास में है, तो वह वहीं रहेगा और इसलिए, यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि विशेष अधिनियम का उपबंध उसके बाद लागू होगा। यह केवल उस मामले में होगा जहाँ अभियुक्त को या तो अभियोजन पक्ष द्वारा जानबूझकर गिरफ्तार नहीं किया जाता है या गिरफ्तार किया जाता है और जमानत पर रिहा कर दिया जाता है इसीलिये न्यायालय के कहने पर आगे की गिरफ्तारी की कोई आवश्यकता नहीं है। इसी तरह, हम यह भी जोड़ेंगे कि विशेष अधिनियम के अंतर्गत उपलब्ध संहिता की धारा 167 (2) जैसे समविषय या इसी तरह के उपबंध का अस्तित्व अभियुक्त को व्यतिक्रम जमानत के लिए हकदार बनाने के समान प्रभाव का होगा। यहाँ तक कि न्यायालय को संहिता की धारा 440 के अंतर्गत समाधान पर विचार करना होगा।*

30. ***सतेंद्र कुमार अंतिल*** (पूर्वोक्त) मामले में 21.03.2023 को जारी किए गए अनुवर्ती आदेश में, उच्चतम न्यायालय ने ***महदूम बावा बनाम सीबीआई,*** 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 299 में पहले के निर्णय को ध्यान में रखते हुए स्पष्ट किया कि अग्रिम जमानत की माँग करने वाले आवेदन पर विचार करने के मामलों में भी इसी तरह के सिद्धांत लागू होंगे। ***महदूम बावा*** (पूर्वोक्त) मामले में यह इस प्रकार अभिनिर्धारित किया गया था:

> *"**10.** इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि अपीलार्थीगण को सीबीआई के आदेश पर नहीं बल्कि विचारण न्यायालय के आदेश पर गिरफ्तारी की आशंका है। ऐसा इसलिए है क्योंकि देश के कुछ भागों में, न्यायालयों द्वारा अभियुक्तों को, जैसे ही वे समन आदेश के उत्तर में उपस्थित होते हैं, अभिरक्षा में लेने की प्रथा अपनाई जाती है। इस तरह की प्रथा की सत्यता को उचित मामले में परखा जाना चाहिए। वर्तमान में यह ध्यान रखना पर्याप्त है कि सीबीआई उनकी अभिरक्षा की माँग नहीं कर रहा है, बल्कि अपीलार्थीगण को आशंका है कि उन्हें विचारण न्यायालय द्वारा अभिरक्षा में लिया जा सकता है और यही कारण है कि वे सुरक्षा चाहते हैं। हमें इन अपीलों के भाग्य का निर्णय करते समय इसे ध्यान में रखना चाहिए।*
>
> ***11.** मुख्य अभियुक्त श्री महदूम बावा के मामले में, विद्वान अतिरिक्त महा सॉलिसिटर द्वारा प्रस्तुत एक अतिरिक्त तर्क यह है कि वह ग्यारह अन्य मामलों में शामिल था। लेकिन उन ग्यारह मामलों के सारणीयन से पता चलता है कि उन ग्यारह मामलों में से सात मामले परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138 के अंतर्गत शिकायतें हैं और उन सात में से तीन मामले वास्तव में अंतर-पक्षकारगण हैं और बैंक के कहने पर नहीं हैं। आठवाँ मामला आयकर अधिकारी द्वारा दायर की गई शिकायत है और यह टीडीएस (स्रोत पर कर कटौती) राशि का भुगतान न करने से संबंधित है। शेष तीन मामले सीबीआई द्वारा दायर किए गए मामले हैं, जिनमें से एक वह विषय वस्तु है जिसमें से उपरोक्त अपीलें उत्पन्न होती हैं।"*

31. ***संदीप कुमार बाफना*** (पूर्वोक्त) मामले में न्यायालय वास्तव में दं.प्र.सं. की धारा 439 के अंतर्गत उच्च न्यायालय और सत्र न्यायालय की शक्तियों पर विचार कर रहा था। वर्तमान मामले के तथ्यों से इसका कोई संबंध नहीं है।

32. प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता की यह प्रस्तुति कि अग्रिम जमानत देने का आदेश, वास्तव में, अपनी शक्तियों का प्रयोग करने वाले विद्वान विचारण न्यायालय के विरुद्ध व्यादेश के समान होगा, भी भ्रामक है। यह न्यायालय केवल उस शक्ति का प्रयोग कर रहा है जो दं.प्र.सं. की धारा 438 के अंतर्गत इसमें निहित है, और वही, किसी भी प्रकार से विद्वान विचारण न्यायालय की शक्ति से इनकार नहीं करता है।

33. अब वर्तमान मामले के तथ्यों पर आते हैं, उपरोक्त आपराधिक शिकायत कॉर्पोरेट कार्य मंत्रालय, भारत सरकार (संक्षेप में, 'एमसीए') द्वारा अधिनियम की धारा 212 (1) (ग) के अंतर्गत जारी दिनांक 05.12.2018 के आदेश से उत्पन्न हुई है, जिसमें प्रत्यर्थी द्वारा अभियुक्त कंपनी, अर्थात् मैसर्स ड्यूरा लाइन इंडिया प्राइवेट लिमिटेड (डीआईपीएल) के मामलों की जाँच करने का निर्देश दिया गया है। जाँच पूरी होने पर, प्रत्यर्थी ने दिनांक 25.03.2020 को एमसीए को 19.07.2021 के शुद्धिपत्र के साथ जाँच रिपोर्ट प्रस्तुत की। एमसीए ने अधिनियम की धारा 212 (14) के अंतर्गत पारित दिनांक 19.03.2021 के आदेश के माध्यम से प्रत्यर्थी को आवेदक(कों) सहित अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध शिकायत दर्ज करने और आरंभ करने के लिए

आवश्यक निर्देश और दिशा-निर्देश जारी किए, जिसके अनुसरण में, संबंधित शिकायत दर्ज की गई है।

34. शिकायत दर्ज करने से पहले की जाँच की पूरी प्रक्रिया में, आवेदक(कों) को प्रत्यर्थी द्वारा कभी गिरफ्तार नहीं किया गया और यह विवादित नहीं है कि आवेदक(कों) ने जाँच में सहयोग किया है। इसलिए, मेरे विचार में, ***सतेंद्र कुमार अंतिल*** (पूर्वोक्त) में उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित परीक्षण को लागू करते हुए, आवेदक अग्रिम जमानत दिए जाने के हकदार हैं।

35. यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस निर्णय में ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे इस स्थिति को कमतर आँका जा सके कि आर्थिक अपराध गंभीर प्रकृति के होते हैं और यदि विचारण में आवेदक और अन्य सह-अभियुक्तगण के विरुद्ध आरोप साबित हो जाते हैं, तो उन्हें उचित दंड मिलना चाहिए। हालाँकि, यह दंड दोषसिद्धि के बाद मिलना चाहिए और आरोपों की गंभीरता, अपने आप में विचारण से पहले कारावास का औचित्य नहीं हो सकती।

36. इसलिए, यह आदेश दिया जाता है कि गिरफ्तारी की स्थिति में, आवेदक(कों) को सीसी सं. 272/2022 में, जिसका शीर्षक ***गंभीर कपट अन्वेषण कार्यालय बनाम ड्यूरा लाइन इंडिया प्राइवेट लिमिटेड (डीआईपीएल) एवं अन्य*** है, जो विद्वान विचारण न्यायलय में लंबित है, जमानत पर रिहा किया जाए, परंतु प्रत्येक को 50,000/- रुपये की राशि का निजी बंधपत्र प्रस्तुत करना होगा, तथा प्रत्येक को उतनी ही राशि का एक स्थानीय प्रतिभू विद्वान विचारण

न्यायालय की संतुष्टि के लिए देना होगा, तथा इसके अतिरिक्त निम्नलिखित शर्तों के अधीन होगा:

i. आवेदक(कों) को विचारण में उपस्थित होना होगा जब तक कि अन्यथा विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट नहीं दी गई हो।

ii. आवेदक अभियोजन पक्ष के किसी भी साक्षी या मामले के तथ्यों से परिचित अन्य व्यक्ति से संपर्क नहीं करेंगे, न ही उनसे मिलने जाएँगे, न ही उन्हें कोई उत्प्रेरण, धमकी या वादा करेंगे। आवेदक साक्ष्यों के साथ छेड़छाड़ नहीं करेंगे और न ही किसी ऐसे कार्य या चूक में शामिल होंगे जो विधि-विरुद्ध हो या जिससे लंबित विचारण की कार्यवाही पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े;

iii. उपर्युक्त शर्तों के अतिरिक्त, यह विशेष रूप से निर्देशित किया जाता है कि आवेदक, चाहे प्रत्यक्ष रूप से या अप्रत्यक्ष रूप से, बैंकों या वित्तीय संस्थानों, कंपनियों, संस्थाओं आदि के किसी भी अधिकारी/कर्मचारी से संपर्क नहीं करेंगे, उनसे मुलाकात नहीं करेंगे, या उनके साथ कोई लेन-देन नहीं करेंगे, जो मामले के विषय से संबंधित हैं, चाहे वे भारत में हों या विदेश में;

37. जमानत आवेदनों का निपटान उपरोक्त शर्तों में किया जाता है। निष्फल मानकर लंबित आवेदनों का निपटान किया जाता है।

न्या. नवीन चावला

06 मार्च 2024/एनएस**/एएस**

(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण : *देशी भाषा में निर्णय का अनुवाद मुकद्दमेबाज़ के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा। समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेज़ी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।*